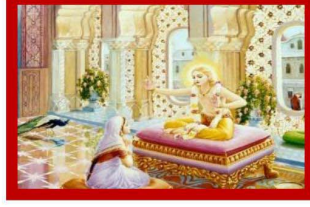




श्रीमद् भागवत का यह सार
भगवद् भक्ति ही आधार

श्रीमद्भागवत रसिक कुटुंब

कपिल गीता अध्याय(3.29)



वर्णन करने सांख्य योग का, और देने को ज्ञान ।
गुरु रूप में कपिल मुनि थे, देवहूति शिष्य समान ।

नारायणं(न्) नमस्कु^{*}त्य, नरं(ञ्) चैव नरोत्तमम् ।
देवीं(म्) सरस्वतीं(वँ) व्यासं(न्), ततो जयमुदीरयेत्

नामसं^{*}कीर्तनं(यँ) यस्य, सर्वपाप^{*}प्रणाशनम् ।
प्रणामो दुःखशमनस्, तं(न्) नमामि हरिं(म्) परम्

श्रीमद्भागवतमहापुराणम्

तृतीय^{*} स्कंधः

॥ अथ एकोन^{*}त्रिंशोऽध्यायः ॥

देवहूतिरुवाच

लक्ष्णं(म्) महदादीनां(म्), प्रकृतेः(फ्) पुरुष^{*}स्य च ।
स्वरूपं(लँ) लक्ष्यतेऽमीषां(यँ), येन तत्पारमार्थिकम् ॥ 1 ॥

यथा साङ्ख्येषु कथितं(यँ), यन्मूलं(न्) तत्प्रचक्षते ।
भक्तियोग^{*}स्य मे मार्गं(म्), ब्रूहि विस्तरशः(फ्) प्रभो ॥ 2 ॥

देवहूतिने पूछा-प्रभो। प्रकृति, पुरुष और महत्तत्त्वादिका जैसा लक्षण सांख्यशास्त्रमें कहा गया है तथा जिसके द्वारा उनका वास्तविक स्वरूप अलग-अलग जाना जाता है और भक्तियोगको ही जिसका प्रयोजन कहा गया है, वह आपने मुझे बताया। अब कृपा करके भक्तियोगका मार्ग मुझे विस्तारपूर्वक बताइये।

विरागो येन पुरुषो, भगवन् सर्वतो भवेत् ।

आचक्ष्व जीवलोकस्य, विविधा मम सं(म्)सृतीः ॥ 3 ॥

इसके सिवा जीवोंकी जन्म-मरणरूपा अनेक प्रकारकी गतियोंका भी वर्णन की जिये जिनके सुननेसे जीवको सब प्रकारकी वस्तुओंसे वैराग्य होता है।

कालस्येश्वररूपस्य, परेषां(ञ्) च परस्य ते ।

स्वरूपं(म्) बत कुर्वन्ति, यद्धेतोः(ख्) कुशलं(ञ्) जनाः ॥ 4 ॥

जिसके भयसे लोग शुभ कर्मोंमें प्रवृत्त होते हैं और जो ब्रह्मादिका भी शासन करनेवाला है, उस सर्वसमर्थ कालका स्वरूप भी आप मुझसे कहिये।

लोकस्य मिथ्याभिमतेरचक्षुषश्-

चिरं(म्) प्रसुप्तस्य तमस्यनाश्रये ।

श्रान्तस्य कर्मस्वनुविद्भया धिया,

त्वमाविरासीः(ख्) किल योगभास्करः ॥ 5 ॥

ज्ञानदृष्टिके लुप्त हो जानेके कारण देहादि मिथ्या वस्तुओंमें जिन्हें आत्माभिमान हो गया है तथा बुद्धिके कर्मासक्त रहनेके कारण अत्यन्त श्रमिक होकर जो चिरकालसे अपार अन्धकारमय संसारमें सोये पड़े हैं, उन्हें जगानेके लिये आप योगप्रकाशक सूर्य ही प्रकट हुए हैं।

मैत्रेय उवाच

इति मातुर्वचः(श्) श्लक्षणं(म्), प्रतिनन्द्य महामुनिः ।

आबभाषे कुरुश्रेष्ठ, प्रीतस्तां(ङ्) करुणार्दितः ॥ 6 ॥

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं— कुरुश्रेष्ठ विदुरजी ! माताके ये मनोहर वचन सुनकर महामुनि कपिलजीने उनकी प्रशंसा की और जीवोंके प्रति दया से द्रवीभूत हो बड़ी प्रसन्नताके साथ उनसे इस प्रकार बोले-

श्रीभगवानुवाच

भक्तियोगो बहुविधो, मार्गैर्भामिनि भाव्यते ।

स्वभावगुणमार्गेण, पुं(म्)सां(म्) भावो विभिद्यते ॥ 7 ॥

श्रीभगवान् ने कहा- माताजी साधकोंके भावके अनुसार भक्तियोगका अनेक प्रकारसे प्रकाश होता है, क्योंकि स्वभाव और गुणोंके भेदसे मनुष्योंके भावमें भी विभिन्नता आ जाती है।

अभिसन्धाय यो हिं(म्)सां(न्), दम्भं(म्) मात्सर्यमेव वा ।

सं(म्)रम्भी भिन्नदृग्भावं(म्), मयि कुर्यात्स तामसः ॥ 8 ॥

जो भेददर्शी क्रोधी पुरुष हृदयमें हिंसा, दम्भ अथवा मात्सर्यका भाव रखकर मुझसे प्रेम करता है, वह मेरा तामस भक्त है।

विषयानभिसन्धाय, यश ऐश्वर्यमेव वा ।

अर्चादावर्चयेद्यो मां(म्), पृथग्भावः(स्) स राजसः ॥ 9 ॥

जो पुरुष विषय, यश और ऐश्वर्यकी कामनासे प्रतिमादिमें मेरा भेदभावसे पूजन करता है, वह राजस भक्त है।

कर्मनिर्हारमुद्दिश्य, परस्मिन् वा तदर्पणम् ।

यजेद्यष्टव्यमिति वा, पृथग्भावः(स्) स सात्त्विकः ॥ 10 ॥

जो व्यक्ति पापोंका क्षय करनेके लिये परमात्माको अर्पण करनेके लिये और पूजन करना कर्तव्य है— इस बुद्धिसे मेरा भेदभावसे पूजन करता है, वह सात्त्विक भक्त है।

मद्गुणंश्रुतिमात्रेण, मयि सर्वगुहाशये ।

मनोगतिरविच्छिन्ना, यथा गङ्गाम्भसोऽम्बुधौ ॥ 11 ॥

लक्षणं(म्) भक्तियोगस्य, निर्गुणस्य ह्युदाहृतम् ।

अहैतुक्यव्यवहिता, या भक्तिः(फ्) पुरुषोत्तमे ॥ 12 ॥

जिस प्रकार गङ्गाका प्रवाह अखण्डरूपसे समुद्रकी ओर बहता रहता है, उसी प्रकार मेरे गुणोंके श्रवणमात्रसे मनकी गतिका तैलधारावत् अविच्छिन्नरूपसे मुझ सर्वान्तर्यामीके प्रति हो जाना तथा मुझ पुरुषोत्तममें निष्काम और अनन्य प्रेम होना—यह निर्गुण भक्तियोगका लक्षण कहा गया है।

सालोक्यसार्ष्टिसामीप्य-सारूप्यैकत्वमप्युत ।

दीयमानं(न्) न गृह्णन्ति, विना मत्सेवनं(ञ्) जनाः ॥ 13 ॥

ऐसे निष्काम भक्त, दिये जानेपर भी, मेरी सेवाको छोड़कर 'सालोक्य', 'सार्ष्टि', 'सामीप्य', 'सारूप्य' और 'सायुज्य' मोक्षतक नहीं लेते।

स एव भक्तियोगाख्य, आत्यन्तिक उदाहृतः ।

येनातिव्रज्य त्रिगुणं(म्), मद्भावायोपपद्यते ॥ 14 ॥

भगवत् सेवाके लिये मुक्तिका तिरस्कार करनेवाला यह भक्तियोग ही परम पुरुषार्थ अथवा साध्य कहा गया है। इसके द्वारा पुरुष तीनों गुणोंको लाँघकर मेरे भावको-मेरे प्रेमरूप अप्राकृत स्वरूपको प्राप्त हो जाता है।

निषेवितेनानिमित्तेन*, स्वधर्मेण महीयसा ।
क्रियायोगेन शस्तेन, नातिहिं(म)सेण नित्यशः ॥ 15 ॥

मद्भिष्यदर्शनस्पर्श-पूजास्तुत्यभिवन्दनैः ।
भूतेषु मद्भावनया, सत्त्वेनासङ्गमेन च ॥ 16 ॥

महतां(म) बहुमानेन, दीनानामनुकम्पया ।
मैत्र्या चैवात्मतुल्येषु, यमेन नियमेन च ॥ 17 ॥

आध्यात्मिकानुश्रवणान्- नामसङ्कीर्तनाच्च मे ।
आर्जवेनार्यसङ्गेन, निरहङ्क्रियया तथा ॥ 18 ॥

मद्धर्मणो गुणैरेतैः(फ), परिसं(म)शुद्ध आशयः ।
पुरुषस्याञ्जसाभ्येति*, श्रुतमात्रगुणं(म) हि माम् ॥ 19 ॥

निष्कामभावसे श्रद्धापूर्वक अपने नित्य-नैमित्तिक कर्तव्यों का पालन कर, नित्यप्रति हिंसारहित उत्तम क्रियायोगका अनुष्ठान करने, मेरी प्रतिमाका दर्शन, स्पर्श, पूजा, स्तुति और वन्दना करने, प्राणियोंमें मेरी भावना करने, धैर्य और वैराग्यके अवलम्बन, महापुरुषोंका मान, दीनोंपर दया और समान स्थितिवालोंके प्रति मित्रताका व्यवहार करने, यम नियमोंका पालन, अध्यात्मशास्त्रोंका श्रवण और मेरे नामोंका उच्च स्वरसे कीर्तन करनेसे तथा मनकी सरलता, सत्पुरुषोंके सङ्ग और अहङ्कारके त्यागसे मेरे धर्मोंका (भागवतधर्मोंका) अनुष्ठान करनेवाले पुरुषका चित्त अत्यन्त शुद्ध होकर मेरे गुणों के श्रवणमात्रसे अनायास ही मुझमें लग जाता है।

यथा वातरथो घ्राण-मावृङ्क्ते गन्ध आशयात् ।
एवं(यँ) योगरतं(ज्) चेत, आत्मानमविकारि यत् ॥ 20 ॥

जिस प्रकार वायुके द्वारा उड़कर जानेवाला गन्ध अपने आश्रय पुष्पसे घ्राणेन्द्रियतक पहुँच जाता है, उसी प्रकार भक्तियोगमें तत्पर और राग-द्वेषादि विकारोंसे शून्य चित्त परमात्माको प्राप्त कर लेता है।

अहं(म) सर्वेषु भूतेषु, भूतात्मावस्थितः(स) सदा ।
तमवज्ञाय मां(म) मर्त्यः(ख), कुरुतेऽर्चाविडम्बनम् ॥ 21 ॥

मैं आत्मारूपसे सदा सभी जीवोंमें स्थित हूँ; इसलिये जो लोग मुझ सर्वभूतस्थित परमात्माका अनादर करके केवल प्रतिमामें ही मेरा पूजन करते हैं, उनकी वह पूजा स्वाँगमात्र है।

यो मां(म्) सर्वेषु भूतेषु, सन्तमात्मानमीश्वरम् ।

हिंत्वा^{*}र्चा(म्) भजते मौढ्याद्- भस्म^{*}न्येव जुहोति सः ॥ 22 ॥

मैं सबका आत्मा, परमेश्वर सभी भूतोंमें स्थित हूँ; ऐसी दशामें जो मोहवश मेरी उपेक्षा करके केवल प्रतिके पूजनमें ही लगा रहता है, वह तो मानो भस्ममें ही हवन करता है।

द्विषतः(फ्) परकाये मां(म्), मानिनो भिन्नदर्शिनः ।

भूतेषु बद्ध^{*}वैर^{*}स्य, न मनः(श्) शान्ति^{*}मृच्छति ॥ 23 ॥

जो भेददर्शी और अभिमानी पुरुष दूसरे जीवोंके साथ वैर बाँधता है और इस प्रकार उनके शरीरोंमें विद्यमान मुझ आत्मासे ही द्वेष करता है, उसके मनको कभी शान्ति नहीं मिल सकती।

अहमुच्चावचैर्द्रव्यैः(ख), क्रिययोत्पन्नयानघे ।

नैव तुष्येऽर्चितोऽर्चायां(म्), भूतग्रामावमानिनः ॥ 24 ॥

माताजी ! जो दूसरे जीवोंका अपमान करता है, वह बहुत-सी घटिया-बढ़िया सामग्रियोंसे अनेक प्रकारके विधि-विधान के साथ मेरी मूर्तिका पूजन भी करे तो भी मैं उससे प्रसन्न नहीं हो सकता।

अर्चादावर्चयेत्ताव-दीश्वरं(म्) मां(म्) स्वकर्मकृत् ।

यावन्न वेदं^{*} स्वहृदि, सर्वभूतेष्ववस्थितम्^{*} ॥ 25 ॥

मनुष्य अपने धर्मका अनुष्ठान करता हुआ तबतक मुझ ईश्वरकी प्रतिमा आदिमें पूजा करता रहे, जबतक उसे अपने हृदयमें एवं सम्पूर्ण प्राणियों में स्थित परमात्माका अनुभव न हो जाय।

आत्मनश्च परस्यापि, यः(ख) करोत्यन्तरोदरम् ।

तस्य भिन्नदृशो मृत्युः(र्), विदधे भयमुल्बणम्^{*} ॥ 26 ॥

जो व्यक्ति आत्मा और परमात्मा के बीचमें थोड़ा-सा भी अन्तर करता है, उस भेददर्शीको मैं मृत्युरूपसे महान् भय उपस्थित करता हूँ।

अथ मां(म्) सर्वभूतेषु, भूतात्मानं(ङ्) कृतालयम् ।

अर्हयेद्दानमानाभ्यां(म्), मैत्र्याभिन्नेन चक्षुषा^{*} ॥ 27 ॥

अतः सम्पूर्ण प्राणियोंके भीतर घर बनाकर उन प्राणियोंके ही रूप में स्थित मुझ परमात्माका यथायोग्य दान, मान, मित्रताके व्यवहार तथा समदृष्टिके द्वारा पूजन करना चाहिये।

जीवाः(श्) श्रेष्ठा ह्यजीवानां(न्), ततः(फ्) प्राणभृतः(श्) शुभे ।

ततः(स्) सचित्ताः(फ्) प्रवरास्- ततश्चेन्द्रियवृत्तयः^{*} ॥ 28 ॥

तत्रापि स्पर्शवेदिभ्यः(फ्), प्रवरा रसवेदिनः ।

तेभ्यो गन्धविदः(श्) श्रेष्ठास्- ततः(श्) शब्दविदो वराः^{*} ॥ 29 ॥

माताजी! पाषणादि अचेतनोंकी अपेक्षा वृक्षादि जीव श्रेष्ठ हैं, उनसे साँस लेनेवाले प्राणी श्रेष्ठ हैं, उनमें भी मनवाले प्राणी उत्तम और उनसे इन्द्रियकी वृत्तियोंसे युक्त प्राणी श्रेष्ठ हैं। सेन्द्रिय प्राणियोंमें भी केवल स्पर्शका अनुभव करनेवालोंकी अपेक्षा रसका ग्रहण कर सकनेवाले मत्स्यादि उत्कृष्ट हैं तथा रसवेताओं की अपेक्षा गन्धका अनुभव करनेवाले (भ्रमरादि) और गन्धका ग्रहण करनेवालोंसे भी शब्दका ग्रहण करनेवाले (सर्पादि) श्रेष्ठ हैं।

रूपभेदविदस्तत्र, ततश्चोभयतोदतः ।

तेषां(म्) बहुपदाः(श्) श्रेष्ठाश्- चतुष्पादस्ततो द्विपात् ॥ 30 ॥

उनसे भी रूपका अनुभव करनेवाले (काकादि) उत्तम हैं और उनकी अपेक्षा जिनके ऊपर-नीचे दोनों ओर दाँत होते हैं, वे जीव श्रेष्ठ हैं उनमें भी बिना पैरवालोंसे बहुत-से चरणोंवाले श्रेष्ठ हैं तथा बहुत चरणोंवालोंसे चार चरणवाले और चार चरणकलोंसे भी दो चरणवाले मनुष्य श्रेष्ठ हैं।

ततो वर्णाश्च चत्वारस्- तेषां(म्) ब्राह्मण उत्तमः ।

ब्राह्मणेष्वपि वेदज्ञो, ह्यर्थज्ञोऽभ्यधिकस्ततः ॥ 31 ॥

मनुष्यों में भी चार वर्ण श्रेष्ठ हैं उनमें भी ब्राह्मण श्रेष्ठ हैं। ब्राह्मणों में वेदको जाननेवाले उत्तम हैं और वेदज्ञोंमें भी वेदका तात्पर्य जाननेवाले श्रेष्ठ हैं।

अर्थज्ञात्सं(म्) शयच्छेत्ता, ततः(श्) श्रेयान् स्वकर्मकृत् ।

मुक्तसंज्ञस्ततो भूया- नदोग्धा धर्ममात्मनः ॥ 32 ॥

तात्पर्य जाननेवालोंसे संशय निवारण करनेवाले, उनसे भी अपने वर्णाश्रमोचित धर्मका पालन करनेवाले तथा उनसे भी आसक्तिका त्याग और अपने धर्मका निष्कामभावसे आचरण करनेवाले श्रेष्ठ हैं।

तस्मान्मय्यर्पिताशेष-क्रियार्थात्मा निरन्तरः ।

मय्यर्पितात्मनः(फ्) पुं(म्)सो, मयि सत्र्यस्तकर्मणः ।

न पश्यामि परं(म्) भूत-मकर्तुः(स्) समदर्शनात् ॥ 33 ॥

उनकी अपेक्षा भी जो लोग अपने सम्पूर्ण कर्म, उनके फल तथा अपने शरीरको भी मुझे ही अर्पण करके भेदभाव छोड़कर मेरी उपासना करते हैं, वे श्रेष्ठ हैं। इस प्रकार मुझे ही चित्त और कर्म समर्पण करनेवाले अकर्ता और समदर्शी पुरुषसे बढ़कर मुझे कोई अन्य प्राणी नहीं दीखता।

मनसैतानि भूतानि, प्रणमेद्वहुमानयन् ।

ईश्वरो जीवकलया, प्रविष्टो भगवानिति ॥ 34 ॥

अतः यह मानकर कि जीवरूप अपने अंशसे साक्षात् भगवान् ही सबमें अनुगत हैं, इन समस्त प्राणियोंको बड़े आदरके साथ मनसे प्रणाम करे।

भक्तियोगश्च योगश्च, मया मानव्युदीरितः ।

ययोरेकतरेणैव, पुरुषः(फ्) पुरुषं(वँ) व्रजेत् ॥ 35 ॥

माताजी! इस प्रकार मैंने तुम्हारे लिये भक्तियोग और अष्टाङ्गयोगका वर्णन किया। इनमेंसे एकका भी साधन करनेसे जीव परमपुरुष भगवान्को प्राप्त कर सकता है।

एतद्भगवतो रूपं(म्), ब्रह्मणः(फ्) परमात्मनः ।

परं(म्) प्रधानं(म्) पुरुषं(न्), दैवं(ङ्) कर्मविचेष्टितम् ॥ 36 ॥

रूपभेदास्पदं(न्) दिव्यं(ङ्), काल इत्यभिधीयते ।

भूतानां(म्) महदादीनां(यँ), यतो भिन्नदृशां(म्) भयम् ॥ 37 ॥

भगवान् परमात्मा परब्रह्मका अद्भुत प्रभावसम्पन्न तथा जागतिक पदार्थोंके नानाविध वैचित्र्यका हेतुभूत स्वरूपविशेष ही 'काल' नामसे विख्यात है। प्रकृति और पुरुष इसीके रूप हैं तथा इनसे यह पृथक् भी है। नाना प्रकारके कर्मोंका मूल अदृष्ट भी यही है तथा इसीसे महत्तत्त्वादिके अभिमानी भेददर्शी प्राणियोंको सदा भय लगा रहता है।

योऽन्तः(फ्)प्रविश्य भूतानि, भूतैरत्यखिलाश्रयः ।

स विष्णवाख्योऽधियज्ञोऽसौ, कालः(ख्) कलयतां(म्) प्रभुः ॥ 38 ॥

जो सबका आश्रय होनेके कारण समस्त प्राणियोंमें अनुप्रविष्ट होकर भूतोंद्वारा ही उनका संहार करता है, वह जगत् का शासन करनेवाले ब्रह्मादिका भी प्रभु भगवान् काल ही यज्ञोंका फल देनेवाला विष्णु है।

न चास्य कश्चिद्दयितो, न द्वेष्टो न च बान्धवः ।

आविर्शत्यप्रमत्तोऽसौ, प्रमत्तं(ज्) जनमन्तकृत् ॥ 39 ॥

इसका न तो कोई मित्र है न कोई शत्रु और न तो कोई सगा सम्बन्धी ही है। यह सर्वदा सजग रहता है और अपने स्वरूपभूत श्रीभगवान्को भूलकर भोगरूप प्रमादमें पड़े हुए प्राणियोंपर आक्रमण करके उनका संहार करता है।

यद्भयाद्वाति वातोऽयं(म्), सूर्यस्तपति यद्भयात् ।

यद्भयाद्वर्षते देवो, भगणो भाति यद्भयात् ॥ 40 ॥

इसीके भयसे वायु चलता है, इसीके भयसे सूर्य तपता है, इसीके भयसे इन्द्र वर्षा करते हैं और इसीके भयसे तारे चमकते हैं।

यद्वनस्पतयो भीता, लताश्चौषधिभिः(स्) सह ।

स्वे स्वे कालेऽभिगृह्णन्ति, पुष्पाणि च फलानि च ॥ 41 ॥

इसीसे भयभीत होकर ओषधियोंके सहित लताएँ और सारी वनस्पतियाँ समय-समयपर फल-फूल धारण करती हैं।

स्रवन्ति सरितो भीता, नोत्सर्पत्युदधिर्यतः ।

अग्निरिन्धे सगिरिभिर्-भूर्न मज्जति यद्भयात् ॥ 42 ॥

इसीके डरसे नदियाँ बहती है और समुद्र अपनी मर्यादासे बाहर नहीं जाता। इसीके भयसे अग्नि प्रज्वलित होती है और पर्वतोंके सहित पृथ्वी जलमें नहीं डूबती।

नभो ददाति^{*} श्वसतां(म्), पदं(यँ) यन्नियमाददः ।

लोकं(म्) स्वदेहं(न्) तनुते, महान् संप्त^{*}भिरावृतम् ॥ 43 ॥

इसीके शासनसे यह आकाश जीवित प्राणियोंको श्वास-प्रश्वासके लिये अवकाश देता है और महत्तत्त्व अहंकाररूप शरीरका सात आवरणोंसे युक्त ब्रह्माण्डके रूपमें विस्तार करता है।

गुणाभिमानिनो देवाः(स्), सर्गादिष्व^{*}स्य यद्भयात्^{*} ।

वर्तन्ते^{*}ऽनुयुगं(यँ) येषां(वँ), वश एतच्चराचरम् ॥ 44 ॥

इस कालके ही भयसे सत्त्वादि गुणोंके नियामक विष्णु आदि देवगण, जिनके अधीन यह सारा चराचर जगत् है, अपने जगत्-रचना आदि कार्योंमें युगक्रमसे तत्पर रहते हैं।

सोऽन्तो^{*}ऽन्तकरः(ख्) कालोऽ-नादिरादिकृदव्ययः^{*} ।

जनं(ञ्) जनेन जनयन् , मारयन् मृत्युनान्तकम् ॥ 45 ॥

यह अविनाशी काल स्वयं अनादि किन्तु दूसरोंका आदिकर्ता (उत्पादक) है तथा स्वयं अनन्त होकर भी दूसरोंका अन्त करनेवाला है। यह पितासे पुत्रकी उत्पत्ति कराता हुआ सारे जगत् की रचना करता है और अपनी संहारशक्ति मृत्युके द्वारा यमराजको भी मरवाकर इसका अन्त कर देता है।

इति^{*} श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहं(म्)स्यां(म्) सं(म्)हितायां(न्)

तृतीयस्कन्धे कापिलेयोपाख्याने एकोनत्रिं(म्)शोऽध्यायः ॥

ॐ पूर्णमदः(फ्) पूर्णमिदं(म्)पूर्णात्पूर्णमुदच्यते^{*}

पूर्णस्य^{*} पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते^{*} ॥

ॐ शान्तिः(श्)शान्तिः(श्)शान्तिः ॥